

## Chapter चौदह

### राजा वेन की कथा

मैत्रेय उवाच

भृगवादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ।

गोपतर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ऋषि ने आगे कहा; भृगु-आदयः—भृगु इत्यादि; ते—वे सब; मुनयः—मुनिगण; लोकानाम्—लोगों की; क्षेम-दर्शिनः—कुशल चाहनेवाले; गोपतरि—राजा की; असति—अनुपस्थिति में; वै—निश्चय ही; नृणाम्—समस्त लोगों का; पश्यन्तः—जानते हुए; पशु-साम्यताम्—पशुतुल्य जीवन।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : हे महावीर विदुर, भृगु इत्यादि ऋषि सदैव जनता के कल्याण के लिए चिन्तन करते थे। जब उन्होंने देखा कि राजा अंग की अनुपस्थिति में जनता के हितों की रक्षा करनेवाला कोई नहीं रह गया तो उनकी समझ में आया कि बिना राजा के लोग स्वतंत्र एवं असंयमी हो जाएँगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में *क्षेमदर्शिनः* शब्द महत्वपूर्ण है, जिसका संदर्भ इन लोगों के लिए है जो लोग सदैव जनता की भलाई की चाह रखते हैं। भृगु की अगुवाई में समस्त ऋषि सदैव सोचते रहते थे कि ब्रह्माण्ड भर के लोगों को किस प्रकार आध्यात्मिक स्तर (आत्मपद) तक उठाया जाये। निस्सन्देह, वे प्रत्येक लोक के राजा को जीवन के इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जनता पर शासन करने का उपदेश देते रहते थे। ऋषिगण राजाध्यक्ष अथवा राजा को सलाह देते थे और वह उनके आदेशों के अनुसार प्रजा पर शासन चलाता था। राजा अंग के लोप हो जाने पर ऋषियों के आदेशों को पालने वाला कोई न था। इससे सभी नागरिक यहाँ तक उच्छृङ्खल हो गये कि उनकी तुलना पशुओं से की जाने लगी। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.१३) में वर्णन है मानव समाज को गुण तथा कर्म के अनुसार चार आश्रमों में विभक्त कर देना चाहिए। प्रत्येक समाज में बुद्धिमान वर्ग, प्रशासक वर्ग, उत्पादक वर्ग तथा श्रमिक वर्ग होना चाहिए। आधुनिक प्रजातंत्र में यह वैज्ञानिक विभाजन अस्त-व्यस्त हो गया है और शूद्रों अर्थात् श्रमिक वर्ग को मतदान द्वारा प्राशासनिक पदों के लिए चुना जाता है। जीवन के चरमलक्ष्य का ज्ञान न होने के कारण ऐसे व्यक्ति जीवन का उद्देश्य जाने बिना अपनी सनक वश नियम बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी सुखी नहीं है।

वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ।  
प्रकृत्यसम्मतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

वीर—वेन की; मातरम्—माता को; आहूय—बुलाकर; सुनीथाम्—सुनीथा नाम की; ब्रह्म-वादिनः—वेदों में पारंगत ऋषिगण;  
प्रकृति—मंत्रियों से; असम्मतम्—असहमत; वेनम्—वेन को; अभ्यषिञ्चन्—सिंहासन पर बैठा दिया; पतिम्—स्वामी; भुवः—  
विश्व का।

तब ऋषियों ने वेन की माता रानी सुनीथा को बुलाया और उनकी अनुमति से वेन को विश्व  
के स्वामी के रूप में सिंहासन पर बिठा दिया। तथापि सभी मंत्री इससे असहमत थे।

श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ।  
निलिल्युर्दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; नृप—राजा का; आसन-गतम्—सिंहासन पर आरूढ़; वेनम्—वेन को; अति—अत्यन्त; उग्र—घोर;  
शासनम्—दंड देनेवाला; निलिल्युः—अपने को छिपा लिया; दस्यवः—सभी चोर; सद्यः—तुरन्त; सर्प—साँपों से; त्रस्ताः—डरे  
हुए; इव—सदृश; आखवः—चूहे।

यह पहले से ज्ञात था कि वेन अत्यन्त कठोर तथा क्रूर था, अतः जैसे ही राज्य के चोरों तथा  
उचक्यों ने सुना कि वह राज-सिंहासन पर आरूढ़ हो गया है, वे उससे बहुत भयभीत हुए और वे  
सब उसी तरह छिप गये जिस प्रकार चूहे अपने आपको सर्पों से छिपा लेते हैं।

तात्पर्य : जब सरकार अत्यधिक निर्बल होती है, तो चोर तथा उचक्रे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार जब  
सरकार प्रबल होती है, तो सारे चोर-उचक्रे लुप्त हो जाते हैं या छिप जाते हैं। निस्सन्देह, वेन अच्छा  
राजा न था, किन्तु वह क्रूर तथा कठोर समझा जाता था। इस तरह राज्य चोर-उचक्यों से मुक्त हो गया।

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ।  
अवमेने महाभागान्स्तब्धः सम्भावितः स्वतः ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

सः—राजा वेन; आरूढ—स्थित; नृप-स्थानः—राजा के आसन पर; उन्नद्धः—अत्यन्त घमंडी; अष्ट—आठ; विभूतिभिः—  
ऐश्वर्यों से; अवमेने—अपमान करने लगा; महा-भागान्—महापुरुषों को; स्तब्धः—अदूरदर्शी; सम्भावितः—महान् समझते हुए;  
स्वतः—अपने आपको।

जब राजा सिंहासन पर बैठा तो वह आठों ऐश्वर्यों से युक्त होकर सर्वशक्तिमान बन गया।  
फलतः वह अत्यन्त घमंडी हो गया। झूठी प्रतिष्ठा के कारण वह अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लगा

और इस प्रकार से वह महापुरुषों का अपमान करने लगा।

तात्पर्य : इस श्लोक में अष्ट-विभूतिभिः शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है, “आठ ऐश्वर्यों से।” राजा को आठ ऐश्वर्यों से युक्त होना चाहिए। सामान्यतः योगाभ्यास के बल से राजा इन आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेते थे। ऐसे राजा राजर्षि कहलाते थे। योगाभ्यास के बल से राजर्षि छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा बन सकता था और मनवांछित वस्तु प्राप्त कर सकता था। वह राज्य उत्पन्न कर सकता था, सबों को वश में करके उन पर शासन कर सकता था। ये ही राजा के कतिपय ऐश्वर्य होते थे। किन्तु राजा वेन को योग का अभ्यास नहीं था, तो भी उसे अपने राजपद का घमंड हो गया। विचारवान न होने के कारण वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने और महापुरुषों का अपमान करने लगा।

एवं मदन्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ।  
पर्यटन्नथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मद-अन्धः—अधिकार के कारण अन्धा हुआ; उत्सिक्तः—घमंडी; निरङ्कुशः—उद्धंड; इव—सदृश; द्विपः—हाथी; पर्यटन्—घूमता हुआ; रथम्—रथ पर; आस्थाय—चढ़कर; कम्पयन्—हिलाता हुआ; इव—निरसन्देह; रोदसी—आकाश तथा पृथ्वी।

राजा वेन अपने ऐश्वर्य के मद से अन्धा होकर रथ पर आसीन होकर निरंकुश हाथी के समान सारे राज्य में घूमने लगा। जहाँ-जहाँ वह जाता, आकाश तथा पृथ्वी दोनों हिलने लगते।

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।  
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; यष्टव्यम्—एक भी यज्ञ हो पाते; न—न तो; दातव्यम्—कोई दान दे सकता था; न—नहीं; होतव्यम्—आहुति दी जा सकती थी; द्विजाः—हे द्विजन्मा; क्वचित्—किसी भी समय; इति—इस प्रकार; न्यवारयत्—रोक दिया; धर्मम्—धार्मिक नियमों की विधियाँ; भेरी—ढिंढोरा ( बाजा ); घोषेण—शब्द से; सर्वशः—सर्वत्र।

राजा वेन ने अपने राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि सभी द्विजों ( ब्राह्मणों ) को अब से किसी भी तरह का यज्ञ करने, दान देने या घृत की आहुति देने की मनाही कर दी गई। दूसरे शब्दों में, उसने सभी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान बन्द करा दिये।

तात्पर्य : जो कुछ राजा वेन ने हजारों वर्ष पूर्व किया था वह आज सारे संसार में नास्तिक सरकारों

द्वारा किया जा रहा है। विश्व की स्थिति ऐसी नाजुक है कि कोई भी सरकार किसी भी समय धार्मिक अनुष्ठानों को बन्द करने की घोषणा कर सकती है। अन्ततः स्थिति इतनी गिर जाएगी कि इस लोक में पवित्र मनुष्यों के लिए जीना दूभर हो जाएगा। अतः बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए कि गम्भीरतापूर्वक कृष्णभक्ति करें जिससे वे इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त और अधिक कष्ट उठाये बिना भगवान् के धाम को जा सकें।

वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ।

विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सन्निधः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वेनस्य—वेन का; आवेक्ष्य—देखकर; मुनयः—सभी मुनिगण; दुर्वृत्तस्य—धूर्त के; विचेष्टितम्—कार्यकलाप; विमृश्य—विचार करके; लोक-व्यसनम्—सामान्य लोगों के लिए संकट; कृपया—दयावश; ऊचुः—कहा; स्म—भूतकाल में; सन्निधः—यज्ञों के कर्ता।

अतः सभी ऋषिगण एकत्र हुए और वेन के अत्याचारों को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार के मनुष्यों पर महान् संकट तथा प्रलय आनेवाला है। अतः वे दयावश परस्पर बातें करने लगे, क्योंकि वे स्वयं ही यज्ञों को सम्पन्न करनेवाले थे।

तात्पर्य : राजा वेन सिंहासन पर बैठने से पहले तक सभी ऋषिगण समाज का कल्याण देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहते थे। जब उन्होंने देखा कि राजा वेन अत्यन्त गैरजिम्मेदार, क्रूर तथा अत्याचारी है, तो वे फिर से जनता के कल्याण के विषय में विचार करने लगे। यह समझ लेना चाहिए कि साधु, सज्जन तथा भक्त कभी भी जनकल्याण से विरत नहीं रहते। सामान्य कर्मजन्म इन्द्रियतृप्ति के लिए धन संग्रह करते होते हैं और ज्ञानी मुक्ति की इच्छा से एकान्त भाव से चिन्तन करते रहते हैं, किन्तु वास्तविक भक्त तथा साधु पुरुष सदैव चिन्तित रहते हैं कि लोगों को किस प्रकार भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से सुखी बनाया जाए। अतः सभी ऋषि एकत्र होकर राजा वेन द्वारा उत्पन्न भयावह वातावरण से उबरने के लिए मंत्रणा करने लगे।

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ।

दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; उभयतः—दोनों ओर से; प्राप्तम्—प्राप्त; लोकस्य—लोगों का; व्यसनम्—संकट; महत्—भारी; दारुणि—लट्टा; उभयतः—दोनों ओर से; दीप्ते—जलता हुआ; इव—सदृश; तस्कर—चोरों तथा उचक्यों से; पालयोः—तथा राजा से।

ऋषियों ने परस्पर विमर्श करके देखा कि जनता दोनों ओर से विकट स्थिति में है। जब किसी लट्टे के दोनों सिरों पर अग्नि प्रज्वलित रहती है, तो बीच में स्थित चीटियाँ अत्यन्त विकट स्थिति में रहती हैं। इसी प्रकार उस समय एक ओर अनुत्तरदायी राजा तथा दूसरी ओर चोर-उचक्यों के कारण जनता अत्यन्त विकट स्थिति में फँसी हुई थी।

अराजकभयादेष कृतो राजातदर्हणः ।

ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अराजक—बिना राजा के होने से; भयात्—भयवश; एषः—यह वेन; कृतः—बनाया था; राजा—राजा; अ-तत्-अर्हणः—अयोग्य होने पर भी; ततः—उससे; अपि—भी; आसीत्—था; भयम्—संकट; तु—तब; अद्य—अब; कथम्—कैसे; स्यात्—क्या हो सकता है; स्वस्ति—सुख; देहिनाम्—प्राणियों का।

राज्य को अराजकता से बचाने के लिए सोच-विचार कर ऋषियों ने राजनीतिक संकट के कारण वेन को, अयोग्य होते हुए भी राजा बनाया था। किन्तु हाय! अब तो जनता राजा द्वारा ही अशान्त बनाई जा रही है। ऐसी अवस्था में भला लोग किस प्रकार सुखी रह सकते हैं?

तात्पर्य : भगवद्गीता (१८.५) में कहा गया है कि विरक्त अवस्था में भी मनुष्य को यज्ञ, दान, तथा तप का परित्याग नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को यज्ञ करना चाहिए, गृहस्थों को दान देना चाहिए और विरक्तों (वानप्रस्थ तथा संन्यासी) को तपस्या करनी चाहिए। ये ऐसी विधियाँ हैं जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति आत्म-पद को प्राप्त हो सकता है। जब ऋषियों-मुनियों ने देखा कि राजा वेन ने ये सारे कार्य बन्द करा दिये हैं, तो उन्हें जनता की उन्नति की चिन्ता हुई। साधु पुरुष ईशचेतना या कृष्णचेतना का उपदेश देते हैं, क्योंकि वे जन-सामान्य को पाशविक जीवन के संकटों से बचाना चाहते हैं। यह देखने के लिए कि नागरिक सचमुच अपने धार्मिक कृत्य करते हैं, एक उत्तम सरकार होनी चाहिए तथा चोरों-उचक्यों पर रोक लगानी चाहिए। जब ऐसा होगा तो लोग शान्तिपूर्वक आध्यात्मिक चेतना में अग्रसर होंगे और उनके जीवन सफल हो जाएँगे।

अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ।

वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसम्भवः ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

अहेः—सर्प के; इव—सदृश; पयः—दूध से; पोषः—पालन; पोषकस्य—पालक का; अपि—भी; अनर्थ—हित विरुद्ध; भृत्—होता है; वेनः—राजा वेन; प्रकृत्या—प्रकृति से; एव—निश्चय ही; खलः—दुष्ट; सुनीथा—सुनीथा के; गर्भ—गर्भ से; सम्भवः—उत्पन्न।

ऋषिगण अपने आप में सोचने लगे कि सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण राजा वेन स्वभाव से अत्यन्त दुष्ट ( उत्पाती ) है। इस दुष्ट राजा का समर्थन करना वैसा ही है जैसे सर्प को दूध पिलाना। अब यह समस्त संकटों का कारण बन गया है।

तात्पर्य : साधु पुरुष सामान्यतः सामाजिक कार्यों एवं भौतिक जीवन से पृथक् रहते हैं। साधु पुरुषों ने राजा वेन का समर्थन इसीलिए किया था कि वह नागरिकों को चोर-उचक्यों से सुरक्षित रखेगा, किन्तु सिंहासन में बैठने के बाद वह मुनियों के कष्ट का कारण बन गया। साधु पुरुष विशेष रूप से यज्ञ करने में रुचि लेते हैं जिससे आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रगति हो, किन्तु वेन साधु पुरुषों की कृपा से अनुगृहीत न होकर उनका शत्रु बन गया, क्योंकि वह उन्हें सामान्य कर्तव्यों को करने से भी रोकने लगा। जो साँप केवल दूध तथा केले के बल पर पाला जाता है, वह अपने दाँतों में विष ही विष एकत्र करता है और उस क्षण की प्रतीक्षा में रहता है कि कब अपने स्वामी को काटे।

निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ।

तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

निरूपितः—नियुक्त; प्रजा-पालः—राजा; सः—वह; जिघांसति—क्षति पहुँचाना चाहता है; वै—निश्चय ही; प्रजाः—नागरिक; तथा अपि—तो भी; सान्त्वयेम—हमें समझाना चाहिए; अमुम्—उसको; न—नहीं; अस्मान्—हमको; तत्—उसका; पातकम्—पापमय फल; स्पृशेत्—छू सकेंगे।

हमने इस वेन को नागरिकों की सुरक्षा के हेतु नियुक्त किया था, किन्तु अब वह उनका शत्रु बन चुका है। इन सब न्यूनताओं के होते हुए भी, हमें चाहिए कि उसे तुरन्त समझाने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से हमें उसके पाप स्पर्श नहीं कर सकेंगे।

तात्पर्य : ऋषियों ने वेन को राजा बनाने के लिए चुना, किन्तु वह उत्पाती सिद्ध हुआ। अतः ऋषियों को भय था कि वे पापमय कर्मों के फल के आगे न ही जायें। कर्म का नियम मनुष्य को उत्पाती पुरुष की संगति करने से वर्जित करता है। वेन को राजसिंहासन पर बैठाने के लिए चुन कर

मुनियों ने निश्चित रूप से उसका साथ दिया था। अन्ततः राजा वेन इतना उत्पाती बन गया कि ऋषियों को भय होने लगा कि वे उसके कार्यों से कलुषित न हो जायँ। अतः उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने के पूर्व वे उसे मनाना तथा उसकी भूल को सुधारना चाह रहे थे जिससे वह अपनी दुष्टता त्याग दे।

तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ।  
सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ।  
लोकधिक्कारसन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

तत्—उसकी उत्पाती प्रकृति; विद्वद्भिः—परिचित; असत्-वृत्तः—अपवित्र; वेनः—वेन; अस्माभिः—हमारे द्वारा; कृतः—बनाया गया; नृपः—राजा; सान्त्वितः—शान्त किये जाने या समझाने पर; यदि—यदि; नः—हमारा; वाचम्—शब्द; न—नहीं; ग्रहीष्यति—वह स्वीकार करेगा; अधर्म-कृत्—सर्वाधिक दुष्ट; लोक-धिक्-कार—सार्वजनिक निन्दा; सन्दग्धम्—भस्म किया हुआ; दहिष्यामः—जला देंगे; स्व-तेजसा—अपने तेज से।

संत सदृश मुनि लोगों ने आगे सोचा : निस्सन्देह हम उसके दुष्ट स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं, तो भी हमीं ने वेन को राजसिंहासन पर बैठाया है। यदि हम उसे अपनी सलाह मानने के लिए राजी नहीं कर लेते तो जनता उसको दुत्कारेगी और हम भी उनका साथ देंगे। इस प्रकार हम अपने तेज से उसे भस्म कर डालेंगे।

तात्पर्य : साधु पुरुषों की रुचि राजनीतिक मामलों में भले न हो, किन्तु वे जन-सामान्य के कल्याण के विषय में सदैव सोचते रहते हैं। फलस्वरूप कभी-कभी उन्हें भी राजनीतिक क्षेत्र में उतर कर दिग्भ्रमित सरकार को या राजा को रास्ते पर लाने के लिए कदम उठाने पड़ते हैं। किन्तु कलियुग में साधु पुरुष पहले की भाँति शक्तिमान नहीं रह गये हैं। जहाँ वे अपने आध्यात्मिक तेज से पापी मनुष्य को भस्म करने में समर्थ रहते थे, वहीं अब कलियुग के प्रभाव से साधु पुरुषों में ऐसी शक्ति नहीं रही। ब्राह्मणों में तो इतनी भी शक्ति शेष नहीं रही है कि वे पशुमेध यज्ञ कर सकें। जिसमें पशुओं को नवीन जीवन लाभ के लिए अग्नि में धकेला जाता था। ऐसी परिस्थिति में, साधु पुरुषों को राजनीति में भाग न लेकर हरे कृष्ण महामंत्र के जप में तल्लीन रहना चाहिए। भगवान् चैतन्य की कृपा से केवल हरे कृष्ण महामंत्र के जप से ही जनता को बिना किसी राजनीतिक झमेले के सारा लाभ प्राप्त हो सकेगा।

एवमध्यवसायैर्न मुनयो गूढमन्यवः ।

उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; अध्यवसाय—निर्णय करके; एनम्—उसको; मुनयः—मुनियों ने; गूढ-मन्यवः—अपना क्रोध छिपाते हुए; उपव्रज्य—पास जाकर; अब्रुवन्—बोले; वेनम्—राजा वेन से; सान्त्वयित्वा—समझा-बुझा कर; च—भी; सामभिः—मीठे वचनों से।

ऐसा निश्चय करके ऋषिगण राजा वेन के पास गये और अपना वास्तविक क्रोध छिपाते हुए उन्होंने उसे मीठे वचनों से समझाया-बुझाया। फिर उन्होंने इस प्रकार कहा।

मुनय ऊचुः

नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ।

आयुःश्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

मुनयः ऊचुः—मुनियों ने कहा; नृप-वर्य—हे राजाओं में श्रेष्ठ; निबोध—समझने का यत्न करो; एतत्—यह; यत्—जो; ते—तुमको; विज्ञापयाम—हम उपदेश देंगे; भोः—हे राजा; आयुः—उम्र; श्री—ऐश्वर्य; बल—शक्ति; कीर्तीनाम्—उत्तम ख्याति; तव—तुम्हारी; तात—हे पुत्र; विवर्धनम्—बढ़ानेवाली।

मुनियों ने कहा: हे राजन्, हम आपके पास सदुपदेश देने आये हैं। कृपया ध्यानपूर्वक सुनें। ऐसा करने से आपकी आयु, ऐश्वर्य, बल तथा कीर्ति बढ़ेगी।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार राजतंत्र में राजा को साधु पुरुष तथा मुनिजन सलाह देते हैं। उनकी सलाह से वह सबसे बड़ा शासक बन सकता है और उसके राज्य का प्रत्येक प्राणी सुखी, शान्त तथा सम्पन्न हो सकता है। बड़े-बड़े राजा महान् साधु पुरुषों के आदेशों को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट रहते थे। राजा लोग बड़े-बड़े मुनियों यथा पराशर, व्यासदेव, नारद, देवल तथा असित के आदेशों को मानते थे। दूसरे शब्दों में, पहले वे साधु पुरुषों की सत्ता को स्वीकारते थे और तब अपनी राजतंत्र शक्ति का प्रयोग करते थे। दुर्भाग्यवश, कलियुग में राज्य का मुखिया साधुपुरुषों द्वारा दिये गये आदेशों का पालन नहीं करता जिससे न तो प्रजा और न ही सरकारी व्यक्ति सुखी रहते हैं। उनकी आयु घट जाती है, प्रायः हर व्यक्ति दुष्ट है तथा शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों से विहीन होता जा रहा है। यदि इस प्रजातांत्रिक युग में जनता सुखी तथा सम्पन्न होना चाहती है, तो उन्हें चाहिए कि वे धूर्तों तथा मूर्खों को न चुनें जिनमें साधु पुरुषों के लिए कोई आदर भाव नहीं है।



धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ।

लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

धर्मः—धार्मिक नियम; आचरितः—पालन करते हुए; पुंसाम्—व्यक्तियों को; वाक्—शब्दों से; मनः—मन; काय—शरीर; बुद्धिभिः—तथा बुद्धि से; लोकान्—लोक; विशोकान्—शोकरहित; वितरति—प्रदान करते हैं; अथ—निश्चय ही; आनन्त्यम्—अपार सुख, मुक्ति; असङ्गिनाम्—भौतिक प्रभावों से जो मुक्त हैं उन निष्काम मनुष्यों को।

जो लोग धार्मिक नियमों के अनुसार रहते हैं और जो मन, वचन, शरीर तथा बुद्धि से इनका पालन करते हैं, वे स्वर्गलोक को जाते हैं, जो समस्त शोकों (दुखों) से रहित है। इस प्रकार भौतिक प्रभाव से छूट कर वे जीवन में असीम सुख प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर साधु सदृश ऋषि आदेश देते हैं कि राजा अथवा सरकार के प्रमुख को धार्मिक जीवन बिताकर एक उदाहरण स्थापित करना चाहिए। जैसाकि भगवद्गीता में वर्णित है धर्म का अर्थ है भगवान् की पूजा करना। मनुष्य को दिखावटी धार्मिक जीवन नहीं बिताना चाहिए वरन् मन, वचन, शरीर तथा बुद्धि से भली प्रकार से भक्ति करनी चाहिए। ऐसा करने से न केवल राजा अथवा सरकार का प्रमुख प्रकृति के गुणों के कल्मष से अपने को दूर रख सकेगा, वरन् सामान्य जनता भी और वे सब क्रमशः भगवान् के धाम को जा सकेंगे। यहाँ पर जो आदेश दिये गये हैं, वे सरकार के प्रमुख के लिए पथप्रदर्शक का काम करेंगे कि उसे किस प्रकार अपनी शासन-शक्ति का उपयोग करना चाहिए और इस प्रकार न केवल इस जन्म में, वरन् मृत्यु के पश्चात् वाले जीवन में भी सुख प्राप्त करना चाहिए।

स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ।

यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

सः—आध्यात्मिक जीवन; ते—तुम्हारे द्वारा; मा—मत; विनशेत्—विनष्ट होने दें; वीर—हे वीर; प्रजानाम्—लोगों का; क्षेम-लक्षणः—सम्पन्नता का कारण; यस्मिन्—जो; विनष्टे—नष्ट होने पर; नृपतिः—राजा; ऐश्वर्यात्—ऐश्वर्य से; अवरोहति—नीचे गिरता है।

मुनियों ने आगे कहा : अतः हे महान् वीर, आपको सामान्य जनता के आध्यात्मिक जीवन को विनष्ट करने में निमित्त नहीं बनना चाहिए। यदि आपके कार्यों से उनका आध्यात्मिक जीवन विनष्ट होता है, तो आप निश्चित रूप से अपने ऐश्वर्यपूर्ण तथा राजोचित पद से नीचे गिरेंगे।

तात्पर्य : प्राचीन काल में, विश्व के प्रायः सभी भागों में राजतंत्र था, किन्तु धीरे-धीरे जैसे-जैसे

आदर्श धार्मिक जीवन से इन्द्रियतृप्ति के ईश्वर-विहीन जीवन में राजतंत्र का पतन होता गया, विश्व भर से राजतंत्र हटता गया। किन्तु जब तक सरकारी व्यक्ति धार्मिक न हों और महान् धार्मिक पुरुषों के पद-चिह्नों का अनुसरण न करें, तब तक राजतंत्र को मिटाकर उसके स्थान पर प्रजातंत्र को लाना पर्याप्त न होगा।

राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ।

रक्षन् यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

राजन्—हे राजन्; असाधु—दुष्ट; अमात्येभ्यः—मंत्रियों से; चोर-आदिभ्यः—चोरों तथा उचक्यों से; प्रजाः—नागरिक; नृपः—राजा; रक्षन्—रक्षा करते हुए; यथा—जिस प्रकार से; बलिम्—कर; गृह्णन्—स्वीकार करते हुए; इह—इस संसार में; प्रेत्य—मरकर; च—तथा; मोदते—सुख उठाता है।

मुनियों ने आगे कहा : जब राजा दुष्ट मंत्रियों के तथा चोर-उचक्यों के उत्पातों से नागरिकों की रक्षा करता है, तो अपने इन पवित्र कार्यों के कारण वह अपनी प्रजा से कर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार पवित्र राजा इस संसार में और मृत्यु के बाद भी सुख भोग सकता है।

तात्पर्य : इस श्लोक में एक पवित्र राजा के कर्तव्य का बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है। उसका सर्वप्रथम कर्तव्य है कि अपनी प्रजा को चोर-उचक्यों साथ ही साथ उन्हीं जैसे मंत्रियों से भी सुरक्षा प्रदान करे। पहले मंत्रियों का चुनाव नहीं होता था, वरन् राजा ही उन्हें नियुक्त करता था। फलतः यदि राजा पवित्र या कठोर नहीं होता था, तो मंत्री चोर-उचक्य बन जाते थे और दीन जनता का शोषण करते रहते थे। यह देखना राजा का कर्तव्य है कि सरकारी मंत्रालयों या सार्वजनिक-विभागों में चोर-उचक्यों की भरमार तो नहीं हो रही। यदि राजा अपनी प्रजा की रक्षा चोर-उचक्यों से, सरकारी सेवा तथा जन-मामलों में समान रूप से, नहीं कर सकता तो उसे कर लेने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे शब्दों में, जो राजा या सरकार नागरिकों पर कर लगाती है, वह कर तभी ले सकती है जब वह राजा या सरकार नागरिकों की चोर-उचक्यों से रक्षा कर सके।

श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध में (१२.१.४२) सरकारी सेवा के इन चोर-उचक्यों का वर्णन मिलता है। कहा गया है—*प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः* “ये दम्भी म्लेच्छ (शूद्रों से भी निम्न) अपने को राजा कहकर अपनी प्रजा को सतायेंगे और उनकी प्रजा का बर्ताव निम्न स्तर का

होगा। इस तरह से गन्दी आदतों एवं मूर्खतापूर्ण व्यवहार के कारण प्रजा भी राजा के समान हो जायगी।” भाव यह है कि कलियुग के प्रजातांत्रिक काल में सामान्य जनता शूद्रों के स्तर तक पतित हो जायगी। जैसा कहा गया है (कलौ शूद्रसम्भवः) व्यवहारतः विश्व की सारी जनसंख्या शूद्र हो जायगी। शूद्र चौथा वर्ग है, जो तीन उच्च सामाजिक वर्गों की सेवा करने के लिए ही उपयुक्त है। चतुर्थ श्रेणी के व्यक्ति होने के कारण शूद्र अधिक बुद्धिमान नहीं होते। चूँकि आज के प्रजातांत्रिक युग में जनता इतनी पतित हो चुकी है कि वह इसी श्रेणी के व्यक्ति को चुन सकती है, किन्तु इन शूद्रों द्वारा संचालित होने पर सरकार ठीक से नहीं चल सकती। द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति, जिन्हें क्षत्रिय कहा जाता है, बुद्धिमान साधु पुरुषों (ब्राह्मणों) के निर्देशन में देश के शासन की डोर सँभालने के लिए उपयुक्त होते हैं। अन्य युगों—सत्ययुग, त्रेता युग तथा द्वापर युग में जनता इतनी पतित नहीं थी और सरकार के प्रमुख का चुनाव नहीं होता था। राजा ही सर्वोच्च कार्यकारी पुरुष होता था और यदि वह किसी मंत्री को चोरी करते पकड़ लेता था, तो या तो वह तुरन्त उसका वध करवा देता था या सेवा से निकाल दिया जाता था। राजा का कर्तव्य होता था कि वह चोर-उचक्यों का वध करे। इसी प्रकार उसका यह भी कर्तव्य होता था कि बेईमान मंत्री का तुरन्त वध कर दे। ऐसी चौकसी से राजा अपना शासन ठीक से चला सकता था और प्रजा भी ऐसे राजा को पाकर प्रसन्न रहती थी। निष्कर्ष यह है कि जब तक राजा चोर-उचक्यों से अपनी प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता, तब तक उसे कोई अधिकार नहीं है कि वह अपनी इन्द्रिय-तुष्टि के लिए नागरिकों से कर-संग्रह कर सके। किन्तु यदि वह नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करता है और उन पर कर लगाता है, तो वह इस जीवन में सुखपूर्वक और शान्तिपूर्वक रह सकता है और मरने पर वह स्वर्ग को या वैकुण्ठलोक को भी जा सकता है, जहाँ वह सभी प्रकार से सुखी रहेगा।

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ।

इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; राष्ट्रे—राज या राज्य में; पुरे—नगरों में; च—भी; एव—निश्चय ही; भगवान्—भगवान्; यज्ञ-पूरुषः—समस्त यज्ञों का भोक्ता; इज्यते—पूजा जाता है; स्वेन—स्वतः; धर्मेण—वृत्ति द्वारा; जनैः—मनुष्यों के द्वारा; वर्ण-आश्रम—चार वर्ण तथा चार आश्रम इन आठ सामाजिक व्यवस्थाओं की प्रणाली; अन्वितैः—पालन करनेवाले।

वह राजा पवित्र समझा जाता है, जिसके राज्य तथा नगरों में प्रजा वर्ण तथा आश्रम की आठ सामाजिक व्यवस्थाओं का कठोरता से पालन करती है और जहाँ के नागरिक अपने विशिष्ट धर्म (वृत्ति) द्वारा भगवान् की सेवा में संलग्न रहते हैं।

**तात्पर्य :** इस श्लोक में राजा तथा नागरिक के कर्तव्यों की सुन्दर व्याख्या मिलती है। सरकार के प्रमुख या राजा तथा प्रजा के कार्य इस प्रकार होने चाहिए कि अन्ततः प्रत्येक व्यक्ति भगवान् की भक्ति में प्रवृत्त हो। राजा अथवा सरकार का प्रमुख भगवान् का प्रतिनिधि होता है। अतः उससे यह आशा की जाती है कि सारा कार्य उत्तम रीति से चले और नागरिक चार वर्णों तथा चार आश्रमों वाली वैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था का अनुगमन करें। *विष्णु-पुराण* में कहा गया है कि जब तक लोग शिक्षित नहीं होते, अथवा वैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था में स्थित नहीं होते जिसमें चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) एवं चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) सम्मिलित हैं, तब तक समाज मानवीय समाज नहीं हो सकता और न मानव-जीवन के चरम उद्देश्य की ओर अग्रसर ही हुआ जा सकता है। यह सरकार का धर्म है कि वह देखे कि वर्णों तथा आश्रमों का पालन किया जा रहा है। जैसाकि इस श्लोक में आया है— *भगवान् यज्ञपुरुषः*—भगवान् श्रीकृष्ण यज्ञपुरुष हैं। *भगवद्गीता* (५.२९) में कहा गया है— *भोक्तारं यज्ञतपसाम्*। कृष्ण ही समस्त यज्ञों के अन्तिम लक्ष्य हैं। वे ही सभी यज्ञों के भोक्ता हैं, अतः वे यज्ञपुरुष कहलाते हैं। यज्ञपुरुष शब्द भगवान् विष्णु, श्रीकृष्ण या विष्णुतत्त्व की कोटि में आनेवाले किसी भी भगवान् का सूचक होता है। मानव समाज में लोग वर्णों तथा आश्रमों में व्यवस्थित हैं और अपने-अपने कार्यों द्वारा वे भगवान् विष्णु की उपासना में लगे रहते हैं। प्रत्येक नागरिक अपनी वृत्ति में लगा रह कर अपने कर्मों के फल द्वारा सेवा करता है। यही जीवन की पूर्णता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.४६) में कथित है—

*यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।*

*स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥*

“जिस परमेश्वर से सब प्राणियों का जन्म हुआ है और जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, अपने स्वाभाविक कर्म से उसे पूजकर मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त होता है।”

इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को अपने-अपने नियत कर्म करने चाहिए। इस प्रकार हर व्यक्ति भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर सकता है। राजा को या सरकार के प्रमुख को देखना चाहिए कि सारे नागरिक इसी प्रकार से कर्म करें। दूसरे शब्दों में, राज्य या सरकार को अपने कर्तव्य से यह कह कर विमुख नहीं होना चाहिए कि राज्य तो धर्मनिरपेक्ष है, जिसमें लोगों के वर्णाश्रम धर्म के पालन करने या न करने में उसकी रुचि नहीं है। आजकल जो लोग सरकारी सेवा में हैं और लोगों पर शासन करते हैं उनके मनों में वर्णाश्रम धर्म के लिए तनिक भी आदर नहीं है। उनका पूर्ण विश्वास है कि राज्य धर्मनिरपेक्ष है। ऐसी सरकार में कोई कभी सुखी नहीं रह सकता। लोगों को वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिए और राजा का कर्तव्य है कि यह देखे कि वे इसका ठीक से पालन कर रहे हैं।

तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ।

परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उससे; राज्ञः—राजा; महा-भाग—हे श्रेष्ठ; भगवान्—भगवान्; भूत-भावनः—जो इस दृश्य जगत का मूल कारण है; परितुष्यति—प्रसन्न हो जाता है; विश्व-आत्मा—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परमात्मा; तिष्ठतः—स्थित होकर; निज-शासने—अपने शासन में।

हे महाभाग, यदि राजा यह देखता है कि दृश्य जगत के मूल कारण भगवान् तथा हर एक के भीतर स्थित परमात्मा की पूजा होती है, तो भगवान् प्रसन्न होते हैं।

तात्पर्य : यह वास्तव में सरकार का ही कर्तव्य है कि वह देखे कि प्रजा तथा सरकार दोनों के ही कार्यों से भगवान् तुष्ट रहें। यदि सरकार या प्रजा को भगवान् का, जो कि दृश्य जगत के मूल कारण हैं, कोई अनुमान नहीं होता अथवा विश्वात्मा अर्थात् प्रत्येक आत्मा का परम आत्मा अथवा भूतभावन का ज्ञान नहीं होता तो सुख की कोई सम्भावना नहीं रहती। निष्कर्ष यह निकला कि बिना भक्ति किये न तो प्रजा और न सरकार किसी प्रकार भी सुखी रह सकती है। आज के समय में न तो राजा और न सरकार की रुचि इस ओर है कि लोग भगवान् की भक्ति करते हैं अथवा नहीं। अपितु उनकी रुचि इन्द्रियतृप्ति के साधनों के और बढ़ाने में ही है। फलस्वरूप वे प्रकृति के कठिन नियमों की जटिल मशीनरी द्वारा दिन-प्रति-दिन जकड़ते जा रहे हैं। लोगों को प्रकृति के तीनों गुणों से मुक्त किया जाना चाहिए और

इसकी एकमात्र विधि है भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण करना। इसका उपदेश *भगवद्गीता* में दिया हुआ है। दुर्भाग्यवश इसका ज्ञान न तो सरकार को है और न जनता को; वे तो मात्र इन्द्रियतृप्ति में एवं जीवन में सुखी रहने में रुचि रखते हैं। *निज शासने* शब्द सूचित करता है कि वर्णाश्रम धर्म पालन के लिए सरकार तथा प्रजा दोनों उत्तरदायी हैं। यदि जनता एक बार वर्णाश्रम धर्म में प्रवृत्त हो ले तो पूरी सम्भावना है कि इस संसार में तथा अगले जीवन में वास्तविक जीवन तथा सम्पन्नता दोनों ही प्राप्त हो।

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ।

लोकाः सपाला होतस्मै हरन्ति बलिमाहताः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—जब वह; तुष्टे—संतुष्ट या प्रसन्न है; किम्—क्या; अप्राप्यम्—प्राप्त करना असम्भव; जगताम्—विश्व के; ईश्वर-ईश्वरे—नियन्ता के भी नियन्ता; लोकाः—लोकों के वासी; सपालाः—पालकों सहित; हि—इस कारण से; एतस्मै—उसको; हरन्ति—प्रदान करते हैं; बलिम्—पूजा की सामग्री; आहताः—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक।

भगवान् विश्व के नियन्ता बड़े-बड़े देवताओं द्वारा पूजित हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं, तो कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं रह जाता। इसीलिए सभी देवता, लोकपाल तथा उनके लोकों के निवासी भगवान् को सभी प्रकार की पूजा-सामग्री अर्पित करने में अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में सारी वैदिक सभ्यता का सारांश दिया गया है। समस्त जीवात्माओं को, चाहे वे इस लोक के हों या अन्य लोकों के, अपने कर्तव्यों द्वारा भगवान् को प्रसन्न करना होता है। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं, तो जीवन की समस्त आवश्यकताएँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। वेदों में भी कहा गया है—*एको बहूनां यो विदधाति कामान्* (कठोपनिषद् २.२.१३)। वेदों से पता चलता है कि भगवान् सबकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और हम सचमुच ही देख सकते हैं कि निम्न पशु, पक्षी तथा मधुमक्खियाँ, के पास कोई व्यवसाय या काम-धंदा नहीं होता तो भी भोजन के अभाव से वे मरते नहीं। वे प्राकृतिक ढंग से जीवित हैं और उन्हें जीवन की सारी आवश्यकताएं यथा भोजन, निद्रा, मैथुन तथा रक्षा उपलब्ध हैं।

किन्तु मानव समाज ने कृत्रिम रूप में एक नई तरह की सभ्यता को जन्म दिया है, जिसमें मनुष्य भगवान् से अपने सम्बन्ध को भूल जाता है। यहाँ तक कि आधुनिक समाज में ईश्वर की कृपा को भी

लोग भूल जाते हैं। फलतः आधुनिक सभ्य मनुष्य सदैव दुखी और अभावग्रस्त रहता है। लोग नहीं जान पाते कि जीवन का चरम लक्ष्य भगवान् विष्णु के सम्पर्क में रहना है और उन्हें प्रसन्न करना है। वे भौतिकवादी जीवन-शैली को ही सब कुछ मान बैठते हैं और उसी के दास बन गये हैं। दरअसल उनके नेता उन्हें इस पथ पर चलने के लिए सदैव प्रोत्साहित करते हैं और जनता, ईश्वरी नियमों से अनजान रहने के कारण, अपने अंधे नेताओं का अनुसरण करके दुख की राह चले जाते हैं। विश्व की इस परिस्थिति को सुधारने के लिए लोगों को कृष्णभावनामृत की शिक्षा दी जानी चाहिए और वर्णाश्रम पद्धति के अनुसार कर्म करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। राज्य को चाहिए कि वह देखे कि लोग भगवान् को प्रसन्न करने में तत्पर रहते हैं। यह राज्य का मूलभूत कर्तव्य है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का शुभारम्भ आम जनता को भगवान् को प्रसन्न करने की सर्वोत्तम विधि अपनाने और इस प्रकार समस्त समस्याओं को हल करने के लिए आश्वस्त करने के उद्देश्य से किया गया था।

तं सर्वलोकामरयज्ञसङ्ग्रहं

त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।

यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते

राजन्स्वदेशाननुरोद्धमर्हसि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; सर्व-लोक—समस्त लोकों में; अमर—प्रमुख देवों सहित; यज्ञ—यज्ञ; सङ्ग्रहम्—जो स्वीकार करते हैं; त्रयी-मयम्—तीन वेदों का सार; द्रव्य-मयम्—समस्त सामग्री का स्वामी; तपः-मयम्—समस्त तपस्या का उद्देश; यज्ञैः—यज्ञ के द्वारा; विचित्रैः—विभिन्न; यजतः—पूजा करते हुए; भवाय—उन्नति के लिए; ते—तुम्हारी; राजन्—हे राजा; स्व-देशान्—अपने देशवासियों को; अनुरोद्धम्—निर्देश देना; अर्हसि—तुम्हें चाहिए।

हे राजन्, भगवान् प्रमुख अधिष्ठाता देवों सहित समस्त लोकों में समस्त यज्ञों के फल के भोक्ता हैं। परमेश्वर तीनों वेदों के सार रूप हैं, वे हर वस्तु के स्वामी हैं और सारी तपस्या के चरम लक्ष्य हैं। अतः आपके देशवासियों को आपकी उन्नति के लिए विविध प्रकार के यज्ञ करने चाहिए। दरअसल आपको चाहिए कि आप उन्हें यज्ञ करने के लिए निर्देशित करें।

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभि-

र्वितायमानेन सुराः कला हरेः ।

स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं

तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

यज्ञेन—यज्ञ से; युष्मत्—तुम्हारे; विषये—राज्य में; द्विजातिभिः—ब्राह्मणों द्वारा; वितायमानेन—किया जाकर; सुराः—समस्त देवता; कलाः—विस्तार; हरेः—भगवान् के; सु-इष्टाः—भली-भाँति पूजित होकर; सु-तुष्टाः—अत्यधिक सन्तुष्ट; प्रदिशन्ति—प्रदान करेंगे; वाञ्छितम्—इच्छित फल; तत्-हेलनम्—उनके प्रति अनादर; न—नहीं; अर्हसि—चाहिए; वीर—हे वीर; चेष्टितुम्—करना।

जब आपके राज्य के सारे ब्राह्मण यज्ञ में संलग्न होने लगेंगे तो भगवान् के स्वांश समस्त देवता उनके कार्यों से प्रसन्न होकर आपको मनवांछित फल देंगे; अतः हे वीर, यज्ञों को बन्द न करें। यदि उन्हें बन्द कर ते हैं तो आप देवताओं का अनादर करेंगे।

वेन उवाच

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।

ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

वेनः—राजा वेन ने; उवाच—उत्तर दिया; बालिशाः—बच्चों जैसा; बत—ओह; यूयम्—तुम सब; वा—निस्सन्देह; अधर्मे—अधार्मिक नियमों में; धर्म—मानिनः—धर्म मानते हुए; ये—तुम सब जो; वृत्तिदम्—पालन करनेवाले; पतिम्—पति को; हित्वा—त्याग कर; जारम्—परपति को; पतिम्—पति को; उपासते—पूजा करते हैं।

राजा वेन ने उत्तर दिया : तुम तनिक भी अनुभवी नहीं हो। यह अत्यन्त दुख की बात है कि तुम लोग जो कुछ करते रहे हो वह धार्मिक नहीं है, किन्तु तुम लोग उसे धार्मिक मान रहे हो। दर असल, तुम लोग अपने पालनकर्ता वास्तविक पति को त्याग रहे हो और पूजा करने के लिए किसी जार ( परपति ) की तलाश में हो।

तात्पर्य : राजा वेन इतना मूर्ख था कि उसने मुनियों को बच्चों के समान अनुभवहीन कह डाला। दूसरे शब्दों में, वह उनको सही ज्ञान न होने का दोषी बता रहा था। इस प्रकार उसने उनके उपदेश को अस्वीकार करके उनके विरुद्ध दोषारोपण किया कि वे उस स्त्री के समान हैं, जो अपने पालनकर्ता पति की परवाह न करके जार पति को प्रसन्न रखती है जो उसका पालन नहीं करता है। इस उपमा का मन्तव्य स्पष्ट है। क्षत्रियों का कर्तव्य है कि वे ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यों में लगाएँ और राजा को ब्राह्मणों का पालक माना जाता है। यदि ब्राह्मण राजा को न पूज कर अन्य देवताओं के पास जाँय तो वे उतने ही दूषित हैं जितनी कि कुलटा स्त्री।



अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ।  
नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

अवजानन्ति—अनादर करते हैं; अमी—जो; मूढाः—अज्ञानी होकर; नृप-रूपिणम्—राजा के रूप में; ईश्वरम्—भगवान् को; न—नहीं; अनुविन्दन्ति—अनुभव करते हैं; ते—वे; भद्रम्—सुख; इह—इस; लोके—संसार में; परत्र—मृत्यु के बाद; च—भी।

जो लोग अज्ञानतावश उस राजा की पूजा नहीं करते जो कि वास्तव में भगवान् है, तो वे न तो इस लोक में और न परलोक में सुख का अनुभव करते हैं।

को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ।  
भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुर्योषिताम् ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

कः—कौन ( है ); यज्ञ-पुरुषः—समस्त यज्ञों का भोक्ता; नाम—नाम से; यत्र—जिसको; वः—तुम्हारी; भक्तिः—भक्ति; ईदृशी—इतनी महान; भर्तृ—पति के लिए; स्नेह—प्यार; विदूराणाम्—रहित; यथा—जिस प्रकार; जारे—जारपति को; कुर्योषिताम्—कुलटा स्त्री का।

तुम लोग देवताओं के इतने भक्त हो, किन्तु वे हैं कौन? निस्सन्देह, इन देवताओं के प्रति तुम लोगों का स्नेह उस कुलटा स्त्री का सा है, जो अपने विवाहित जीवन की उपेक्षा करके अपने जारपति पर सारा ध्यान केन्द्रित कर देती है।

विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ।  
पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिर्ग्निरपाम्पतिः ॥ २६ ॥  
एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ।  
देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

विष्णुः—भगवान् विष्णु; विरिञ्चः—श्रीब्रह्मा; गिरिशः—शिवजी; इन्द्रः—इन्द्र; वायुः—वायु; यमः—यम, मृत्यु का अधीक्षक; रविः—सूर्यदेव; पर्जन्यः—वर्षा का निदेशक; धन-दः—कुबेर; सोमः—चन्द्रदेव; क्षितिः—पृथ्वी का अधिष्ठता देव; अग्निः—अग्निदेव; अपाम्-पतिः—वरुण, जल का स्वामी; एते—ये सब; च—तथा; अन्ये—अन्य; च—भी; विबुधाः—देवता; प्रभवः—समर्थ; वर-शापयोः—वरदान तथा शाप दोनों में; देहे—शरीर में; भवन्ति—रहते हैं; नृपतेः—राजा का; सर्व-देवमयः—सभी देवताओं से; नृपः—राजा।

विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्यदेव, पर्जन्य, कुबेर, चन्द्रदेव, क्षितिदेव, अग्नि देव, वरुण तथा अन्य बड़े-बड़े देवता जो आशीर्वाद या शाप दे सकने में समर्थ हैं, वे सब राजा के शरीर में वास करते हैं। इसीलिए राजा सभी देवताओं का आगार माना जाता है। देवता राजा के शरीर के भिन्नांश हैं।

**तात्पर्य :** ऐसे अनेक असुर हैं, जो अपने को परम शक्तिमान मानते हुए अपने को सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों का स्वामी बताते हैं। यह मिथ्या अहंकार के कारण है। इसी प्रकार राजा वेन में आसुरी प्रवृत्ति आ गई थी और वह अपने आपको भगवान् मानने लगा था। इस कलियुग में ऐसे असुरों की भरभार है, किन्तु ऋषियों-मुनियों द्वारा इन सबकी भर्त्सना की जाती है।

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा

यजध्वं गतमत्सराः ।

बलिं च मह्यं हरत

मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक्पुमान् ॥ २८ ॥

**शब्दार्थ**

तस्मात्—इस कारण से; माम्—मुझको; कर्मभिः—अनुष्ठान कार्यों के द्वारा; विप्राः—हे ब्राह्मणों; यजध्वम्—पूजा करो; गत—बिना; मत्सराः—ईर्ष्या किये; बलिम्—पूजा की सामग्री; च—भी; मह्यम्—मुझको; हरत—लाओ; मत्तः—मेरी अपेक्षा; अन्यः—दूसरा; कः—कौन ( है ); अग्र-भुक्—प्रथम आहुति का भोक्ता; पुमान्—पुरुष।

राजा वेन ने आगे कहा : इसलिए, हे ब्राह्मणो, तुम मेरे प्रति ईर्ष्या त्याग कर अपने अनुष्ठान कार्यों द्वारा मेरी पूजा करो और समस्त पूजा-सामग्री मुझ पर ही चढ़ाओ। यदि तुम लोग भी बुद्धिमान होगे, तो समझ सकोगे कि मुझसे श्रेष्ठ ऐसा कोई पुरुष नहीं जो समस्त यज्ञों की प्रथम आहुतियों को ग्रहण कर सके।

**तात्पर्य :** जैसाकि श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* में कहा है कि उनसे बड़ा सत्य अन्य कुछ नहीं। राजा वेन भगवान् का अनुकरण कर रहा था और मिथ्या अहंकारवश कह भी रहा था कि वह परमेश्वर है। ये सब आसुरी पुरुषों के लक्षण हैं।

मैत्रेय उवाच

इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ।

अनुनीयमानस्तद्याच्छां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥ २९ ॥

**शब्दार्थ**

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; विपर्यय-मतिः—विपरीत बुद्धि वाला; पापीयान्—अत्यन्त पापी; उत्पथम्—सही रास्ते से; गतः—चलकर; अनुनीयमानः—सभी प्रकार से सम्मानित; तत्-याच्छाम्—मुनियों की याचना; न—नहीं; चक्रे—स्वीकार किया; भ्रष्ट—रहित; मङ्गलः—समस्त पुण्य।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : इस प्रकार अपने पापमय जीवन के कारण दुर्बोध होने तथा सही राह से विचलित होने के कारण राजा समस्त पुण्य से क्षीण हो गया। उसने ऋषियों की सादर

प्रस्तुत प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं कीं, अतः उसकी भर्त्सना की गई।

तात्पर्य : निश्चित ही, असुरों को अधिकारियों की बात पर विश्वास नहीं हो सकता। वास्तव में वे सदैव उनका निरादर करते हैं। वे अपने से धर्म के सिद्धान्त स्वयं गढ़ते हैं और व्यास, नारद और यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण जैसे महापुरुषों की अवज्ञा करते हैं। ज्योंही कोई व्यक्ति अधिकारी पुरुष की अवज्ञा करता है, वह पापी बनकर अपना सारा पुण्य खो देता है। राजा इतना घमंडी तथा अहंकारी हो गया कि उसने बड़े-बड़े ऋषियों का अनादर करने का साहस किया जिससे उसका विनाश हो गया।

इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ।

भग्नायां भव्ययाच्चायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ते—समस्त ऋषि; असत्-कृताः—अपमानित होकर; तेन—राजा द्वारा; द्विजाः—ब्राह्मण; पण्डित-मानिना—अपने को अत्यन्त विद्वान् मानते हुए; भग्नायाम्—टूटकर; भव्य—शुभ; याच्चायाम्—प्रार्थना, याचना; तस्मै—उसको; विदुर—हे विदुर; चुक्रुधुः—अत्यन्त रुष्ट हुए।

हे विदुर, तुम्हारा कल्याण हो। उस मूर्ख राजा ने अपने को अत्यन्त विद्वान् समझकर ऋषियों तथा मुनियों का अपमान किया। राजा के वचनों से ऋषियों दिल टूट गया और वे उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ।

जीवज्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

हन्यताम्—उसे मार डालो; हन्यताम्—मार डालो; एषः—यह राजा; पापः—पाप रूप; प्रकृति—स्वभाव से; दारुणः—अत्यन्त दुष्ट; जीवन्—जीवित रहते हुए; जगत्—सारा संसार; असौ—वह; आशु—शीघ्र; कुरुते—करेगा; भस्मसात्—भस्म, राख; ध्रुवम्—निश्चय ही।

सभी ऋषि तुरन्त हाहाकार करने लगे : इसे मारो! इसे मारो! यह अत्यन्त भयावह और पापी पुरुष है। यदि यह जीवित रहा तो निश्चित रूप से सारे संसार को देखते-देखते भस्म कर देगा।

तात्पर्य : साधु पुरुष सामान्यतः सभी जीवात्माओं के प्रति अत्यन्त दयालु होते हैं, किन्तु यदि कोई सर्प या बिच्छू मार दिया जाये तो वे दुखी नहीं होते। साधु पुरुषों के लिए वध करना ठीक नहीं, किन्तु वे असुरों का वध करने के लिए प्रोत्साहित होते रहते हैं क्योंकि वे सर्पों तथा बिच्छुओं के समान होते

हैं। अतः सब ऋषियों ने निश्चय किया कि राजा वेन का वध कर दिया जाय जो मानव समाज के लिए इतना भयावह था। जिस सीमा तक ऋषियों ने राजा को वास्तव में वश में करना चाहा, उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। यदि कोई राजा या सरकार आसुरी हो जाये तो साधु पुरुष का कर्तव्य है कि सरकार को पलट कर उसके स्थान पर ऐसे योग्य व्यक्तियों को आसीन कराए जो साधु पुरुषों की आज्ञाओं एवं उपदेशों का पालन कर सकें।

नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ।

योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; अयम्—यह व्यक्ति; अर्हति—पात्र है; असत्-वृत्तः—अपवित्र कार्यों से पूर्ण; नर-देव—सांसारिक राजा का या देव का; वर-आसनम्—श्रेष्ठ सिंहासन; यः—जो; अधियज्ञ-पतिम्—समस्त यज्ञों का स्वामी; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; विनिन्दति—अपमान करता है; अनपत्रपः—निर्लज्ज ।

ऋषियों ने आगे कहा : यह अपवित्र, दम्भी व्यक्ति सिंहासन पर बैठने के लिए सर्वथा अयोग्य है। यह इतना निर्लज्ज है कि इसने भगवान् विष्णु का भी अपमान करने का दुस्साहस किया है।

तात्पर्य : किसी को भगवान् विष्णु अथवा उनके भक्तों के प्रति अपमान या निन्दा को कभी सहन नहीं करना चाहिए। भक्त सामान्यतः भद्र एवं विनम्र होता है और किसी से झगड़ा करने से कतराता है। न ही वह किसी से ईर्ष्या करता है। किन्तु शुद्ध भक्त जब यह देखता है कि भगवान् विष्णु या उनके भक्तों का अपमान हो रहा है, तो वह आगबबूला हो जाता है। यह भक्त का कर्तव्य है यद्यपि भक्त विनम्रता एवं भद्रता बनाये रखता है, किन्तु यह सबसे बड़ा दोष है यदि भगवान् या उनके भक्त के अपमान होने पर वह शान्त रहता है।

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ।

प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; वा—निस्सन्देह; एनम्—भगवान्; परिचक्षीत—निन्दा करेगा; वेनम्—राजा वेन को; एकम्—एकाकी; ऋते—सिवाय; अशुभम्—अभागा; प्राप्तः—प्राप्त करके; ईदृशम्—ऐसा; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; यत्—जिसका; अनुग्रह—कृपा; भाजनः—पात्र ।

अभागे राजा वेन को छोड़कर भला ऐसा कौन होगा जो उन भगवान् की निन्दा करेगा, जिनकी कृपा से सभी प्रकार की सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य प्राप्त होता हो ?

तात्पर्य : जब मानव समाज व्यष्टि रूप से या समष्टि रूप से ईश्वर-विहीन हो जाता है और भगवान् की सत्ता की निन्दा करता है, तो समझिये कि उसका विनाश अवश्यम्भावी है। भगवान् की कृपा को न समझने से ऐसी सभ्यता में सभी प्रकार का अशुभ होता रहता है।

इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ।  
निजघ्नुर्हुङ्कृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; व्यवसिताः—निश्चित; हन्तुम्—मारने के लिए; ऋषयः—मुनिगण; रूढ—प्रकट किया; मन्यवः—अपना क्रोध; निजघ्नुः—मार डाला; हुम्-कृतैः—हुंकार या क्रोधपूर्ण शब्दों से; वेनम्—राजा वेन को; हतम्—मृत; अच्युत—भगवान् के विरुद्ध; निन्दया—निन्दा से।

इस प्रकार अपने छिपे क्रोध को प्रकट करते हुए ऋषियों ने राजा को तुरन्त मार डालने का निश्चय कर लिया। राजा वेन भगवान् की निन्दा के कारण पहले से ही मृत तुल्य था। अतः बिना किसी हथियार के ही मुनियों ने हुंकारों से वेन को मार डाला।

ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ।  
सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; स्व-आश्रम-पदम्—अपने-अपने आश्रमों को; गते—लौटकर; पुत्र—उसके पुत्र का; कलेवरम्—शरीर; सुनीथा—सुनीथा, राजा वेन की माता ने; पालयामास—सुरक्षित कर लिया; विद्या-योगेन—मंत्र तथा अवयवों से; शोचती—विलाप करती।

इस सब के बाद ऋषिगण अपने-अपने आश्रमों को चले गये तो राजा वेन की माता सुनीथा अपने पुत्र की मृत्यु से अत्यधिक शोकाकुल हो उठी। उसने अपने पुत्र के शव को कुछ द्रव्यों के द्वारा तथा मंत्र के बल से सुरक्षित रखने का निश्चय किया।

एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ।  
हुत्वाग्नीन्सत्कथाश्चकुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

एकदा—एक बार; मुनयः—सभी साधु पुरुषों ने; ते—वे; तु—तब; सरस्वत्—सरस्वती नदी; सलिल—जल में; आप्लुताः—स्नान किया; हुत्वा—आहुति करके; अग्नीन्—अग्नि में; सत्—कथाः—दिव्य विषयों पर वार्ताएँ; चक्रुः—करने लगे; उपविष्टाः—बैठकर; सरित्—तटे—नदी के किनारे।

एक बार ये ही ऋषि सरस्वती नदी में स्नान करके यज्ञ-अग्नि में आहुति डालने का अपना नित्य कर्म कर रहे थे। इसके पश्चात् नदी के तट पर बैठ कर वे दिव्य पुरुष तथा उनकी लीलाओं के विषय में चर्चा करने लगे।

वीक्ष्योत्थितांस्तदोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् ।

अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

वीक्ष्य—देखकर; उत्थितान्—उत्पन्न; तदा—तब; उत्पातान्—उपद्रव, अशान्ति; आहुः—कहने लगे; लोक—समाज में; भयम्—करान्—आतंक उत्पन्न करते हुए; अपि—क्या; अभद्रम्—दुर्भाग्य; अनाथायाः—बिना शासक के; दस्युभ्यः—चोर-उचक्रों से; न—नहीं; भवेत्—होए; भुवः—विश्व का।

उन दिनों देश में अनेक उपद्रव हो रहे थे जिनसे समाज में आतंक उत्पन्न हो रहा था। अतः सभी मुनि परस्पर बातें करने लगे : चूँकि राजा मर चुका है और संसार का कोई रक्षक नहीं है, अतः चोर-उचक्रों के कारण प्रजा पर विपत्ति आ सकती है।

तात्पर्य : जब भी राज्य में उपद्रव होता है या आतंक छा जाता है, तो नागरिकों की सम्पत्ति तथा उनका जीवन असुरक्षित हो जाता है। यह स्थिति चोर-उचक्रों के बढ़ने से उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्था में यह माना जाता है कि शासक या सरकार मृत है। राजा वेन की मृत्यु के कारण ये सभी विपत्तियाँ आ गईं। अतः साधु पुरुष प्रजा के कल्याण के लिए चिन्ताग्रस्त हो उठे। निष्कर्ष यह है कि यद्यपि साधु पुरुष राजनीतिक मामलों में किसी प्रकार की दखल नहीं देते, किन्तु वे प्रजा पर सदैव दयालु रहते हैं। अतः वे समाज से विलग रह कर भी कृपा तथा दयावश विचार करते हैं कि किस प्रकार सभी नागरिक शान्तिपूर्वक अनुष्ठानों को कर सकें और वर्णाश्रम धर्म के विधि-विधानों का पालन कर सकें। यही इन मुनियों की चिन्ता का विषय था। इस कलिकाल में सब कुछ अस्त-व्यस्त है, अतः साधुपुरुषों को चाहिए कि हरे कृष्ण मंत्र का जप करें जिसकी संस्तुति शास्त्रों ने की है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पन्नता के लिए हर एक का कर्तव्य है कि वह भक्तिपूर्वक हरे कृष्ण मंत्र का जप करे।

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ।

पांसुः समुत्थितो भूरिश्रोणामभिलुम्पताम् ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मृशन्तः—विचार करते हुए; ऋषयः—बड़े-बड़े साधु पुरुष; धावताम्—दौड़ते हुए; सर्वतः—दिशम्—सभी दिशाओं से; पांसुः—धूल; समुत्थितः—उठी हुई; भूरिः—अत्यधिक; श्रोणाम्—चोर-उचक्यों से; अभिलुम्पताम्—लूट-पाट में व्यस्त।

जब ऋषिगण इस प्रकार विचार-विमर्श कर रहे थे तो उन्होंने चारों दिशाओं से धूल की आँधी उठती देखी। यह आँधी उन चोर-उचक्यों के दौड़ा-भागी से उत्पन्न हुई थी जो नागरिकों को लूट रहे थे।

तात्पर्य : चोर-उचक्रे सदैव इस ताक में रहते हैं कि राजनैतिक उथल-पुथल हो और वे जनता को लूटने का अवसर पाएं। अतः इन चोर-उचक्यों को उनके धंधे में निष्क्रिय बनाये रखने के लिए सशक्त सरकार आवश्यक है।

तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ।

भर्तार्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥ ३९ ॥

चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ।

लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

तत्—उस समय; उपद्रवम्—उथल-पुथल; आज्ञाय—समझ कर; लोकस्य—जनता की; वसु—धन-सम्पत्ति; लुम्पताम्—लुटेरों द्वारा; भर्तारि—रक्षक; उपरते—मृत होने से; तस्मिन्—राजा वेन; अन्योन्यम्—परस्पर; च—भी; जिघांसताम्—मारने की इच्छा करते हुए; चोर-प्रायम्—चोरों से पूर्ण; जन-पदम्—राज्य; हीन—रहित; सत्त्वम्—विधान; अराजकम्—राज से रहित; लोकान्—चोर उचक्रे; न—नहीं; आवारयन्—दमन करते हुए; शक्ताः—करने में समर्थ; अपि—यद्यपि; तत्-दोष—उसका दोष; दर्शिनः—मानते हुए।

उस अंधड़ को देखकर साधु पुरुषों ने समझ लिया कि राजा वेन की मृत्यु के कारण अत्यधिक अव्यवस्था फैल गई है। बिना सरकार के राज्य कानून तथा व्यवस्था से विहीन हो जाता है, फलतः उन घातक चोर-उचक्यों का प्राबल्य हो उठा जो प्रजा की सम्पत्ति को लूट रहे थे। यद्यपि ऋषिगण इस उपद्रव को अपनी शक्ति से रोक सकते थे—जिस प्रकार उन्होंने राजा

का वध किया था—किन्तु उन्होंने ऐसा करना अनुचित समझा। अतः उन्होंने उपद्रव को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया।

तात्पर्य : ऋषियों तथा मुनियों ने आपात् काल उपस्थित होने से राजा वेन का वध तो कर दिया, किन्तु मृत्यु के पश्चात् चोर-उचक्यों का जो बोल-बाला हुआ उसको दबाने के लिए सरकार में सम्मिलित होना नहीं चाहिए। ब्राह्मणों तथा साधु पुरुषों का काम वध करना नहीं है, भले ही आपात्काल उपस्थित होने पर वे ऐसा करने को बाध्य हों। वे चाहते तो अपने मंत्रों के बल से सभी चोर-उचक्यों का वध कर सकते थे, किन्तु उनके मतानुसार यह क्षत्रिय राजाओं का कर्तव्य था। अतः अनचाहे भी वध करने के इस कार्य में उन्होंने भाग नहीं लिया।

ब्राह्मणः समदृक्शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ।

स्त्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणः—ब्राह्मण; सम-दृक्—समदर्शी; शान्तः—शान्ति-प्रिय; दीनानाम्—निर्धनों का; समुपेक्षकः—सर्वथा उपेक्षा करनेवाला; स्त्रवते—रिस जाता है; ब्रह्म—आत्म-बल; तस्य—उसका; अपि—निश्चय ही; भिन्न-भाण्डात्—फूटे बर्तन से; पयः—जल; यथा—जिस प्रकार।

ऋषिगण सोचने लगे कि यद्यपि ब्राह्मण शान्त और समदर्शी होने के कारण निष्पक्ष होता है, तो भी उसका कर्तव्य है कि वह दीनों की उपेक्षा न करे। ऐसा करने से उसका आत्मबल उसी प्रकार घट जाता है, जिस प्रकार फूटे बर्तन से पानी रिस जाता है।

तात्पर्य : मानव समाज का सर्वोच्च वर्ग होने के कारण ब्राह्मण अधिकांशतः भक्त होते हैं। वे आध्यात्मिक प्रगति के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण सामान्यतः इस भौतिक जगत में होनेवाली घटनाओं से अनजान रहते हैं। तो भी, जब मानव समाज पर कोई विपदा आती है, तो वे निष्पन्न नहीं रह सकते। यदि वे पीड़ित मानव समाज के उद्धार के लिए कुछ नहीं कर पाते तो यह कहा जाता है कि ऐसी उपेक्षा से उनका आत्मज्ञान घटता है। यद्यपि लगभग सभी ऋषि-मुनि अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए हिमालय जाते हैं, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने कहा है कि वे एकमात्र मुक्ति नहीं चाहते थे। उन्होंने तब तक प्रतीक्षा करने का संकल्प किया जब तक कि संसार की समस्त पतित-आत्माएँ मुक्त न हो जाँय।



ब्राह्मण अपनी उन्नत अवस्था में वैष्णव कहलाते हैं। ब्राह्मण भी दो प्रकार के होते हैं—ब्राह्मण-पंडित और ब्राह्मण-वैष्णव। योग्य ब्राह्मण निस्सन्देह अत्यन्त विद्वान् होता है, किन्तु जब उसका ज्ञान भगवान् को समझने की दिशा में अग्रसर होता है, तो वह ब्राह्मण-वैष्णव बन जाता है। जब तक वह वैष्णव नहीं बन जाता, तब तक ब्राह्मण संस्कृति में उसकी सिद्धि अधूरी रहती है।

उन साधु पुरुषों ने बहुत ही सोच-विचार करके देखा कि यद्यपि राजा वेन पापी हैं किन्तु वह ध्रुव महाराज के वंश में उत्पन्न है, अतः इस कुल के वीर्य का संरक्षण भगवान् केशव ही कर सकेंगे। अतः साधु पुरुषों ने इस स्थिति से निपटने के लिए कुछ कदम उठाने चाहे। राजा के अभाव में सभी कुछ अस्तव्यस्त हो चुका था।

नाङ्गस्य वंशो राजर्षेण संस्थातुमर्हति ।

अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अङ्गस्य—राजा अंग का; वंशः—कुल; राज-ऋषेः—राजर्षि का; एषः—यह; संस्थातुम्—नष्ट होने के लिए; अर्हति—चाहिए; अमोघ—पापरहित, शक्तिशाली; वीर्याः—उनका वीर्य; हि—क्योंकि; नृपाः—राजा; वंशे—वंश में; अस्मिन्—इस; केशव—भगवान् की; आश्रयाः—शरण में।

मुनियों ने निश्चय किया कि राजर्षि अंग के वंश को नष्ट नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि इस वंश का वीर्य अत्यन्त शक्तिशाली रहा है और उसकी सन्तानें भगवत्परायण होती रही हैं।

तात्पर्य : वंशक्रम की शुद्धता अमोघ-वीर्य कहलाती है। द्विजों अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों में वीर्य-परम्परा को शुद्ध बनाये रखने के लिए गर्भाधान संस्कार से लेकर जितने भी संस्कार हैं उनका पालन किया जाना चाहिए। यदि इस शुद्धता-विधि का कठोरता से पालन नहीं किया जाता विशेषतः ब्राह्मणों द्वारा, तो वंशज अशुद्ध होते जाते हैं और धीरे धीरे उस वंश में पापकर्म दृष्टिगोचर होने लगते हैं। महाराज अंग अत्यन्त शुद्ध थे क्योंकि वे महाराज ध्रुव के वंश का वीर्य शुद्ध था। किन्तु उनका वीर्य साक्षात् मृत्यु की पुत्री, अपनी पत्नी सुनीथा, के संसर्ग में दूषित हो चुका था। इस दूषित वीर्य से राजा वेन का जन्म हुआ था। ध्रुव महाराज के वंश की यह सबसे बड़ी दुर्घटना थी। सभी ऋषि-मुनियों ने इस तथ्य पर विचार करके ही कार्यवाही करने का निश्चय किया जिसका वर्णन अगले श्लोकों में हुआ है।

विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ।

ममन्थुरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

विनिश्चित्य—निश्चय करके; एवम्—इस प्रकार; ऋषयः—ऋषियों ने; विपन्नस्य—मृत; मही-पतेः—राजा का; ममन्थुः—मंथन किया; ऊरुम्—जंघाएँ; तरसा—विशिष्ट शक्ति से; तत्र—तत्पश्चात्; आसीत्—उत्पन्न हुआ; बाहुकः—बाहुक ( बौना ) नामक; नरः—व्यक्ति ।

इस निश्चय के बाद, साधु पुरुषों तथा मुनियों ने राजा वेन के मृत शरीर की जाँघों का अत्यन्त शक्तिपूर्वक तथा एक विशेष विधि से मंथन किया। मंथन के फलस्वरूप राजा वेन के शरीर से एक बौने जैसा व्यक्ति उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : राजा वेन की जाँघ के मंथन से एक व्यक्ति का उत्पन्न होना यह बताता है कि आत्मा व्यष्टि है और शरीर से पृथक् रहता है। ऋषि तथा मुनि राजा वेन के मृत शरीर से एक दूसरा व्यक्ति उत्पन्न कर सके, किन्तु वे मृत राजा को जीवित नहीं कर सके। राजा वेन का निधन हो चुका था और उसने निश्चय ही दूसरा शरीर ग्रहण कर लिया था। साधु पुरुषों तथा मुनियों को वेन के शरीर से ही सरोकार था क्योंकि वह महाराज ध्रुव की वंश-परम्परा में था। अतः जिन अवयवों से दूसरा शरीर उत्पन्न किया जा सका, वे राजा वेन के मृत शरीर में विद्यमान थे। जब मृत शरीर की दोनों जाँघों को विशेष विधि से मथा गया तो एक दूसरा शरीर उत्पन्न हो गया। यद्यपि वेन का शरीर मृत था, किन्तु उसकी माता ने उसे मंत्रों तथा ओषधियों से सुरक्षित कर रखा था। फलतः नवीन शरीर उत्पन्न करने के लिए समस्त अवयव उपस्थित थे। अतः जब राजा वेन के मृत शरीर से बाहुक नामक व्यक्ति का शरीर प्रकट हुआ तो यह बहुत आश्चर्यजनक न था। यह तो केवल इसे प्राप्त करने की विधि जानने का प्रश्न था। एक शरीर के वीर्य से दूसरा शरीर उत्पन्न होता है और इसमें आत्मा के निवास करने से जीवन के लक्षण दिखाई देते हैं। कोई यह न सोचे कि महाराज वेन के मृत शरीर से दूसरा शरीर उत्पन्न करना असम्भव था। मुनियों ने अत्यन्त कौशल से यह कार्य सम्पन्न किया।

काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ।

ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

काक-कृष्णः—कौवे के समान काला; अति-ह्रस्व—अत्यन्त लघु; अङ्गः—उसके अंग; ह्रस्व—छोटे; बाहुः—उसकी भुजाएं; महा—विशाल; हनुः—जबड़े; ह्रस्व—छोटे; पात्—उसके पाँव; निम्न—चपटा; नास-अग्रः—नाक का अगला भाग; रक्त—लाल; अक्षः—आँखें; ताम्र—ताँबे जैसा; मूर्ध-जः—केश।

राजा वेन की जंघाओं से उत्पन्न इस व्यक्ति का नाम बाहुक था। उसकी सूरत कौवे जैसी काली थी। उसके शरीर के सभी अंग ठिगने थे, उसके हाथ तथा पाँव छोटे थे और जबड़े लम्बे थे। उसकी नाक चपटी, आँखें लाल-लाल तथा केश ताँबे जैसे रंग के थे।

तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ।

निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; तु—तब; ते—वे ऋषि; अवनतम्—झुक कर; दीनम्—विनम्र; किम्—क्या; करोमि—करूँ; इति—इस प्रकार; वादिनम्—पूछते हुए; निषीद—बैठ जाओ; इति—इस प्रकार; अब्रुवन्—उन्होंने उत्तर दिया; तात—हे विदुर; सः—वह; निषादः—निषाद नाम का; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—हो गया।

वह अत्यन्त विनम्र था और अपना जन्म होते ही उसने विनत होकर पूछा, “महाशय, मैं क्या करूँ?” ऋषियों ने कहा, “बैठ जाओ” (निषीद)। इस प्रकार नैषाद जाति का जनक निषाद उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : शास्त्रों में कहा गया है कि शरीर का शिरोभाग ब्राह्मणों के, भुजाएँ क्षत्रियों के, उदर भाग वैश्यों के तथा जंघा से नीचे पाँव शूद्रों के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। शूद्रों को कभी-कभी कृष्ण अर्थात् काला भी कहते हैं। ब्राह्मण शुक्ल (श्वेत) कहलाते हैं और क्षत्रिय तथा वैश्य इन दोनों रंगों के मिश्रण होते हैं। किन्तु जिनका रंग अत्यन्त श्वेत होता है उनका चर्म श्वेत कुष्ठ के कारण जनित होता है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च वर्ग का रंग श्वेत या सुनहरा और शूद्रों का काला होता है।

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ।

येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—उसके (निषाद के); वंश्याः—वंशज; तु—तब; नैषादाः—नैषाद नामक; गिरि-कानन—पहाड़ियों तथा जंगलों; गोचराः—निवासी; येन—क्योंकि; अहरत्—स्वयं धारण किया; जायमानः—उत्पन्न होकर; वेन—राजा वेन का; कल्मषम्—समस्त प्रकार के पाप; उल्बणम्—अत्यन्त भयानक।

जन्म होते ही उसने (निषाद ने) राजा वेन के समस्त पापपूर्ण कृत्यों के फलों को स्वयं धारण कर लिया। इसलिए यह निषाद जाति सदैव पापपूर्ण कृत्यों में—यथा चोरी, डाका तथा

शिकार में—लगी रहती है। फलतः इन्हें पर्वतों तथा जंगलों में ही रहने दिया जाता है।

तात्पर्य : नैषादों को नगरों तथा कस्बों में नहीं रहने दिया जाता क्योंकि ये स्वभाव से पापी होते हैं। फलतः इनके शरीर कुरूप होते हैं और इनके पेशे भी पापमय होते हैं। लेकिन हमें यह जान लेना चाहिए कि इन पापी मनुष्यों (कभी-कभी इन्हें किरात कहा जाता है) का भी कभी-कभी किसी शुद्ध भक्त की कृपा से उद्धार हो जाता है और वे सर्वोच्च वैष्णव पद को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति से चाहे कोई कितना ही पापी क्यों न हो भगवान् के धाम जाने का पात्र बन जाता है। उसे केवल भक्तियोग द्वारा समस्त कल्मष से मुक्त होना होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के धाम जाने का पात्र बन सकता है। भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (९.३२) में इसकी पुष्टि की है।

*मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।*

*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥*

“हे पार्थ! मेरी शरण में आकर तो पापयोनि वाले, स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को प्राप्त होते हैं।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत “राजा वेन की कथा” नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।